धनुषभंग

चौपाई :

*** देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही। तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥1॥

भावार्थ:

उन्होंने जानकीजी को बहुत ही विकल देखा। उनका एक-एक क्षण कल्प के समान बीत रहा था। यदि प्यासा आदमी पानी के बिना शरीर छोड़ दे, तो उसके मर जाने पर अमृत का तालाब भी क्या करेगा?॥1॥

*** का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥ अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥2॥

भावार्थ:

सारी खेती के सूख जाने पर वर्षा किस काम की? समय बीत जाने पर फिर पछताने से क्या लाभ? जी में ऐसा समझकर श्री रामजी ने जानकीजी की ओर देखा और उनका विशेष प्रेम लखकर वे पुलकित हो गए॥2॥

*** गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा॥ अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥ दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥3॥

भावार्थ:

मन ही मन उन्होंने गुरु को प्रणाम किया और बड़ी फुर्ती से धनुष को उठा लिया। जब उसे (हाथ में) लिया, तब वह धनुष बिजली की तरह चमका और फिर आकाश में मंडल जैसा (मंडलाकार) हो गया॥3॥

*** लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥ तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥4॥

भावार्थ:

लेते, चढ़ाते और जोर से खींचते हुए किसी ने नहीं लखा (अर्थात ये तीनों काम इतनी फुर्ती से हुए कि धनुष को कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा, इसका किसी को पता नहीं लगा), सबने श्री रामजी को (धनुष खींचे) खड़े देखा। उसी क्षण श्री रामजी ने धनुष को बीच से तोड़ डाला। भयंकर कठोर ध्वनि से (सब) लोक भर गए॥4॥ छन्द :

*** भे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले। चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥ सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकलबिकल बिचारहीं। कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

भावार्थ:

घोर, कठोर शब्द से (सब) लोक भर गए, सूर्य के घोड़े मार्ग छोड़कर चलने लगे। दिग्गज चिग्घाड़ने लगे, धरती डोलने लगी, शेष, वाराह और कच्छप कलमला उठे। देवता, राक्षस और मुनि कानों पर हाथ रखकर सब व्याकुल होकर विचारने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं (जब सब को निश्चय हो गया कि) श्री रामजी ने धनुष को तोड़ डाला, तब सब 'श्री रामचन्द्र की जय' बोलने लगे।

सोरठा :

*** संकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबलु। बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहिं मोह बस॥261॥

भावार्थ:

शिवजी का धनुष जहाज है और श्री रामचन्द्रजी की भुजाओं का बल समुद्र है। (धनुष टूटने से) वह सारा समाज डूब गया, जो मोहवश पहले इस जहाज पर चढ़ा था। (जिसका वर्णन ऊपर आया है।)॥261॥

चौपाई :

*** प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥ कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥1॥

भावार्थ:

प्रभु ने धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी पर डाल दिए। यह देखकर सब लोग सुखी हुए। विश्वामित्र रूपी पवित्र समुद्र में, जिसमें प्रेम रूपी सुंदर अथाह जल भरा है,॥1॥

*** रामरूप राकेसु निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥ बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना॥2॥

भावार्थ:

राम रूपी पूर्णचन्द्र को देखकर पुलकावली रूपी भारी लहरें बढ़ने लगीं। आकाश में बड़े जोर से नगाड़े बजने लगे और देवांगनाएँ गान करके नाचने लगीं॥2॥

*** ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा॥ बरिसहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किंनर गीत रसाला॥3॥

भावार्थ:

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वर लोग प्रभु की प्रशंसा कर रहे हैं और आशीर्वाद दे रहे हैं। वे रंग-बिरंगे फूल और मालाएँ बरसा रहे हैं। किन्नर लोग रसीले गीत गा रहे हैं॥3॥

*** रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुषभंग धुनि जात न जानी॥ मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी॥4॥

भावार्थ:

सारे ब्रह्माण्ड में जय-जयकार की ध्वनि छा गई, जिसमें धनुष टूटने की ध्वनि जान ही नहीं

पड़ती। जहाँ-तहाँ स्त्री-पुरुष प्रसन्न होकर कह रहे हैं कि श्री रामचन्द्रजी ने शिवजी के भारी धनुष को तोड़ डाला॥4॥ जयमाला पहनाना, परशुराम का आगमन व क्रोध

दोहा :

*** बंदी मागध सूतगन बिरुद बदहिं मतिधीर। करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर॥262॥

भावार्थ:

धीर बुद्धि वाले, भाट, मागध और सूत लोग विरुदावली (कीर्ति) का बखान कर रहे हैं। सब लोग घोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं॥262॥

चौपाई :

*** झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥ बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए॥1॥

भावार्थ:

झाँझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाड़े आदि बहुत प्रकार के सुंदरबाजे बज रहे हैं। जहाँ-तहाँ युवतियाँ मंगल गीत गा रही हैं॥1॥

*** सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥ जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। तैरत थकें थाह जनु पाई॥2॥

भावार्थ:

सखियों सहित रानी अत्यन्त हर्षित हुईं, मानो सूखते हुए धान पर पानी पड़ गया हो। जनकजी ने सोच त्याग कर सुख प्राप्त किया। मानो तैरते-तैरते थके हुए पुरुषने थाह पा ली हो॥2॥

*** श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसें दिवस दीप छबि छूटे॥ सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥3॥

भावार्थ:

धनुष टूट जाने पर राजा लोग ऐसे श्रीहीन (निस्तेज) हो गए, जैसे दिन में दीपक की शोभा जाती रहती है। सीताजी का सुख किस प्रकार वर्णन किया जाए, जैसे चातकी स्वाती का जल पा गई हो॥3॥

*** रामहि लखनु बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥ सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीताँ गमनु राम पहिं कीन्हा॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी को लक्ष्मणजी किस प्रकार देख रहे हैं, जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो। तब शतानंदजी ने आज्ञा दी और सीताजी ने श्री रामजी के पास गमन किया॥4॥

दोहा :

*** संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार। गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार॥263॥

भावार्थ:

साथ में सुंदर चतुर सखियाँ मंगलाचार के गीत गा रही हैं, सीताजी बालहंसिनी की चाल से चलीं। उनके अंगों में अपार शोभा है॥263॥

चौपाई :

*** सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥ कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई॥1॥

भावार्थ:

सखियों के बीच में सीताजी कैसी शोभित हो रही हैं, जैसे बहुत सी छवियों के बीच मेंमहाछवि हो। करकमल में सुंदर जयमाला है, जिसमें विश्व विजय की शोभा छाई हुईहै॥1॥

*** तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु लखि परइ न काहू॥ जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥2॥

भावार्थ:

सीताजी के शरीर में संकोच है, पर मन में परम उत्साह है। उनका यह गुप्त प्रेम किसी को जान नहीं पड़ रहा है। समीप जाकर, श्री रामजी की शोभा देखकर राजकुमारी सीताजी जैसे चित्र में लिखी सी रह गईं॥2॥

*** चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥ सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥3॥

भावार्थ:

चतुर सखी ने यह दशा देखकर समझाकर कहा- सुहावनी जयमाला पहनाओ। यह सुनकर सीताजी ने दोनों हाथों से माला उठाई, पर प्रेम में विवश होने से पहनाई नहीं जाती॥3॥

*** सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥ गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली॥4॥

भावार्थ:

(उस समय उनके हाथ ऐसे सुशोभित हो रहे हैं) मानो डंडियों सहित दो कमल चन्द्रमा को डरते हुए जयमाला दे रहे हों। इस छवि कोदेखकर सखियाँ गाने लगीं। तब सीताजी ने श्री रामजी के गले में जयमाला पहना दी॥4॥

सोरठा :

*** रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन। सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥264॥

भावार्थ:

श्री रघुनाथजी के हृदय पर जयमाला देखकर देवता फूल बरसाने लगे। समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गए मानो सूर्य को देखकर कुमुदों का समूह सिकुड़ गया हो॥264॥

चौपाई :

*** पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे॥ सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥1॥

भावार्थ:

नगर और आकाश में बाजे बजने लगे। दुष्ट लोग उदास हो गए और सज्जन लोग सब प्रसन्न हो गए। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं॥1॥

*** नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि छूटीं॥ जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं॥2॥

भावार्थ:

देवताओं की स्त्रियाँ नाचती-गाती हैं। बार-बार हाथों से पुष्पों की अंजलियाँ छूट रही हैं। जहाँ-तहाँ ब्रह्म वेदध्वनि कर रहे हैं और भाट लोग विरुदावली (कुलकीर्ति) बखान रहे हैं॥2॥

*** महिं पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥ करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त बिसारी॥3॥

भावार्थ:

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों लोकों में यश फैल गया कि श्री रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ दिया और सीताजी को वरण कर लिया। नगर के नर-नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत) को भुलाकर (सामर्थ्य से बहुत अधिक) निछावर कर रहे हैं॥3॥

*** सोहति सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी॥ सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥4॥

भावार्थ:

श्री सीता-रामजी की जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो सुंदरता और श्रृंगार रस एकत्र हो गए हों। सखियाँ कह रही हैं- सीते! स्वामी के चरण छुओ, किन्तु सीताजी अत्यन्त भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूतीं॥4॥

दोहा :

*** गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि। मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥265॥

भावार्थ:

गौतमजी की स्त्री अहल्या की गति का स्मरण करके सीताजी श्री रामजी के चरणों को हाथों से स्पर्श नहीं कर रही हैं। सीताजी की अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुलमणि श्री रामचन्द्रजी मन में हँसे॥265॥

चौपाई :

*** तब सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माखे॥ उठि उठि पहिरि सनाह अभागे।

जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥1॥

भावार्थ:

उस समय सीताजी को देखकर कुछ राजा लोग ललचा उठे। वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजामन में बहुत तमतमाए। वे अभागे उठ-उठकर, कवच पहनकर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे॥1॥

*** लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ॥ तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई। जीवत हमहि कुअँरि को बरई॥2॥

भावार्थ:

कोई कहते हैं, सीता को छीन लो और दोनों राजकुमारों को पकड़कर बाँध लो। धनुष तोड़ने से ही चाह नहीं सरेगी (पूरी होगी)। हमारे जीते-जी राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है?॥2॥

*** जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥ साधु भूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहि लाज लजानी॥3॥

भावार्थ:

यदि जनक कुछ सहायता करें, तो युद्ध में दोनों भाइयों सहित उसे भी जीत लो। ये वचन सुनकर साधु राजा बोले- इस (निर्लज्ज) राज समाज को देखकर तो लाज भी लजा गई॥3॥

*** बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥ सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई॥4॥

भावार्थ:

अरे! तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई और नाक (प्रतिष्ठा) तो धनुष के साथ ही चली गई। वही वीरता थी कि अब कहीं से मिली है? ऐसी दुष्ट बुद्धि है, तभी तो विधाता ने तुम्हारे मुखों पर कालिख लगा दी॥4॥

दोहा :

*** देखहु रामहि नयन भरि तजि इरिषा मदु कोहु।। लखन रोषु पावकु प्रबल जानि सलभ जनि होहु ॥266॥

भावार्थ:

ईर्षा, घमंड और क्रोध छोड़कर नेत्र भरकर श्री रामजी (की छबि) को देख लो। लक्ष्मण के क्रोध को प्रबल अग्नि जानकर उसमें पतंगे मत बनो॥266॥

चौपाई :

***बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि ससु चहै नाग अरि भागू॥ जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिवद्रोही॥1॥

भावार्थ:

जैसे गरुड़ का भाग कौआ चाहे, सिंह का भाग खरगोश चाहे, बिना कारण ही क्रोध करने वाला अपनी कुशल चाहे, शिवजी से विरोध करने वाला सब प्रकार की सम्पत्ति चाहे,॥1॥

*** लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥ हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥2॥

भावार्थ:

लोभी-लालची सुंदर कीर्ति चाहे, कामी मनुष्य निष्कलंकता (चाहे तो) क्या पा सकता है? और जैसे श्री हरि के चरणों से विमुख मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, हे राजाओं! सीता के लिए तुम्हारा लालच भी वैसा ही व्यर्थ है॥2॥

*** कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखीं लवाइ गईं जहँ रानी॥ रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥3॥

भावार्थ:

कोलाहल सुनकर सीताजी शंकित हो गईं। तब सखियाँ उन्हें वहाँ ले गईं, जहाँ रानी (सीताजी की माता) थीं। श्री रामचन्द्रजी मन में सीताजी के प्रेम का बखान करते हुए स्वाभाविक चाल से गुरुजी के पास चले॥3॥

***रानिन्ह सहित सोच बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया॥ भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥4॥

भावार्थ:

रानियों सहित सीताजी (दुष्ट राजाओं के दुर्वचन सुनकर) सोच के वश हैं कि न जाने विधाता अब क्या करने वाले हैं। राजाओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी इधर-उधर ताकते हैं, किन्तु श्री रामचन्द्रजी के डर से कुछ बोल नहीं सकते॥4॥

दोहा :

*** अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहि चोप॥267॥

भावार्थ:

उनके नेत्र लाल और भौंहें टेढ़ी हो गईं और वे क्रोध से राजाओं की ओर देखने लगे, मानो मतवाले हाथियों का झुंड देखकर सिंह के बच्चे को जोश आ गया हो॥267॥

चौपाई :

*** खरभरु देखि बिकल पुर नारीं। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥ तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥1॥

भावार्थ:

खलबली देखकर जनकपुरी की स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं और सब मिलकर राजाओं को गालियाँ देने लगीं। उसी मौके पर शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुल रूपी कमल के सूर्य परशुरामजी आए॥1॥

*** देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥ गौरि सरीर भूति भल भ्राजा।

भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥2॥

भावार्थ:

इन्हें देखकर सब राजा सकुचा गए, मानो बाज के झपटने पर बटेर लुक (छिप) गए हों। गोरे शरीर पर विभूति (भस्म) बड़ी फब रही है और विशाल ललाट पर त्रिपुण्ड्र विशेष शोभा दे रहा है॥2॥

*** सीस जटा ससिबदनु सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥ भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥3॥

भावार्थ:

सिर पर जटा है, सुंदर मुखचन्द्र क्रोध के कारण कुछ लाल हो आया है। भौंहें टेढ़ी और आँखें क्रोध से लाल हैं। सहज ही देखते हैं, तो भी ऐसा जान पड़ता है मानो क्रोध कर रहे हैं॥3॥

*** बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥ कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधें। धनु सर कर कुठारु कल काँधें॥4॥

भावार्थ:

बैल के समान (ऊँचे और पुष्ट) कंधे हैं, छाती और भुजाएँ विशाल हैं। सुंदर यज्ञोपवीत धारण किए, माला पहने और मृगचर्म लिए हैं। कमर में मुनियों का वस्त्र (वल्कल) और दो तरकस बाँधे हैं। हाथ में धनुष-बाण और सुंदर कंधे पर फरसा धारण किए हैं॥4॥

दोहा :

*** सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप। धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप॥268॥

भावार्थ:

शांत वेष है, परन्तु करनी बहुत कठोर हैं स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानो वीर रस ही मुनि का शरीर धारण करके, जहाँ सब राजा लोग हैं, वहाँ आ गया हो॥268॥

चौपाई :

*** देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥ पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥1॥

भावार्थ:

परशुरामजी का भयानक वेष देखकर सब राजा भय से व्याकुल हो उठ खड़े हुए और पिता सहित अपना नाम कह-कहकर सब दंडवत प्रणाम करने लगे॥1॥

*** जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी। सो जानइ जनु आइ खुटानी॥ जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥2॥

भावार्थ:

परशुरामजी हित समझकर भी सहज ही जिसकी ओर देख लेते हैं, वह समझता है मानो मेरी आयु पूरी हो गई। फिर जनकजी ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया॥2॥

*** आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं। निज समाज लै गईं सयानीं॥ बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥3॥

भावार्थ:

परशुरामजी ने सीताजी को आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं और (वहाँ अब अधिक देर ठहरना ठीक न समझकर) वे सयानी सखियाँ उनको अपनी मंडली में ले गईं। फिर विश्वामित्रजी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयों को उनके चरण कमलों पर गिराया॥3॥

*** रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥ रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥4॥

भावार्थ:

(विश्वामित्रजी ने कहा-) ये राम और लक्ष्मण राजा दशरथ के पुत्र हैं। उनकी सुंदर जोड़ी देखकर परशुरामजी ने आशीर्वाद दिया। कामदेव के भी मद को छुड़ाने वाले श्री रामचन्द्रजी के अपार रूप को देखकर उनके नेत्र थकित (स्तम्भित) हो रहे॥4॥

दोहा :

*** बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर। पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर॥269॥

भावार्थ:

फिर सब देखकर, जानते हुए भी अनजान की तरह जनकजी से पूछते हैं कि कहो यह बड़ी भारी भीड़ कैसी है? उनके शरीर में क्रोध छा गया॥269॥

चौपाई :

*** समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥ सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखंड महि डारे॥1॥

भावार्थ:

जिस कारण सब राजा आए थे, राजा जनक ने वे सब समाचार कह सुनाए। जनक के वचन सुनकर परशुरामजी ने फिरकर दूसरी ओर देखा तो धनुष के टुकड़े पृथ्वी पर पड़े हुए दिखाई दिए॥1॥

*** अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥ बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥2॥

भावार्थ:

अत्यन्त क्रोध में भरकर वे कठोर वचन बोले- रे मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा? उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़! आज मैं जहाँ तक तेरा राज्य है, वहाँ तक की पृथ्वी उलट दूँगा॥2॥

*** अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं॥ सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥3॥

भावार्थ:

राजा को अत्यन्त डर लगा, जिसके कारण वे उत्तर नहीं देते। यह देखकर कुटिल राजा मन में बड़े प्रसन्न हुए। देवता, मुनि, नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सभी सोच करने लगे, सबके हृदय में बड़ा भय है॥3॥

***मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥ भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥4॥

भावार्थ:

सीताजी की माता मन में पछता रही हैं कि हाय! विधाता ने अब बनी-बनाई बात बिगाड़ दी। परशुरामजी का स्वभाव सुनकर सीताजी को आधा क्षण भी कल्प के समान बीतते लगा॥4॥

दोहा :

*** सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु। हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु॥270॥

भावार्थ:

तब श्री रामचन्द्रजी सब लोगों को भयभीत देखकर और सीताजी को डरी हुई जानकर बोले- उनके हृदय में न कुछ हर्ष था न विषाद-॥270॥

मासपारायण नौवाँ विश्राम